Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity - ISSN : 2279-0233

Continuous Issue-28 | January – March 2017

महाकवि कालिदास की दृष्टि में शिक्षा विषयक चिंतन कणिकाएँ

भारतवर्ष में प्राचीन काल से मानव-जीवन में शिक्षा का विशेष महत्व रहा है ।

तत्व-साक्षात्कार से लेकर चरित्र निर्माण पर्यन्त जीवन के विविध पक्षों में सत-शिक्षा मानव को सदा उन्नत करती रही है । 'शिक्षा' मनुष्य को जीवन के नानाविध क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए सुयोग्य और सक्षम बनाती है । शिक्षा में बुद्धि,विकास और ज्ञानोपार्जन का प्रमुख स्थान है । शरीर को स्वस्थ और बलिष्ठ, भावों को सुन्दर और संयत, चरित्र को निर्मल; परोपकारी तथा धार्मिक बनाना आवश्यक है । यह सारा काम उत्तम शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है।

' **शिक्ष विद्योपादने** ' धातु से 'अड़' प्रत्यय से 'टाप्' प्रत्यय होकर 'शिक्षा' शब्द निष्पन्न होता है। ' शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनयेति शिक्षा '- अर्थात् जिस साधन प्रणाली से मनुष्य ज्ञान उपार्जित करता है , उसी का नाम शिक्षा है । दूसरे शब्दों में आत्मा को संस्कृत करना ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है । ऋषिओं की दृष्टि में विद्या वही है, जो हमे अज्ञान के बंधन से विमुक्त कर दे - ' सा विद्या या विमुक्तये ' । भगवान श्री कृष्ण ने गीता में ' अध्यात्मविद्या विद्यानाम्' कहकर इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है।

महाकवि कालिदास ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी रचनाओं में जो विचार रखे हैं , उनसे उनकी इस राष्ट्रिय समस्या के प्रति पूर्ण सजगता का संकेत मिलता है । वे अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे । उनकी कृतिओं में अनेक ज्ञान - विद्याओं का समावेश है। महाकवि ने अपनी रचनाओं में सांस्कृतिक मान्यताओं, धर्म-दर्शन-कला-शिक्षा आदि की चर्चा की है । शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार सुस्पष्ट हैं। शिक्षा का उद्देश्य क्या हो ? शिक्षक का व्यक्तित्व कैसा हो ? शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन की अपरिहार्यता है या नहीं ? शिक्षा के प्रति शासन की नीति क्या हो ? आदि प्रश्नों का उत्तर हमे महाकवि कालिदास की कृतिओं में मिलता है।

शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए महाकवि कहते हैं कि कोरे पुस्तकीय ज्ञान को प्राप्त कर लेना अपने में कोई अर्थ नहीं रखता । विद्या-अर्जन के पश्चात् सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है - ' विद्यामभ्यसनेन '[१] । हमारे अर्जित ज्ञान की लोक में सार्थकता तभी है, जब वह वह व्यवहार में भी उतनी ही खरी उतरे । एक अच्छे शिक्षक के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए महाकवि ने कहा है कि श्रेष्ठ शिक्षक वही है, जिसकी अपने विषय में गहरी पैंठ हो। अध्यापन क्षमता भी उत्कृष्ट कोटि की होनी चाहिए, जिससे छात्रों को श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ मिल सके। [२] महाकवि ने ऐसे अध्यापक को ' सुतीर्थ ' की संज्ञा दी है, किन्तु अध्यापक यदि अपने उत्तरदायित्व का सही निर्वाह नहीं करता तो कालिदास की लेखनी उसे क्षमा भी नहीं करती । मालविकाग्निमित्र में ऐसे शिक्षकों के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्टरूप से कहा है कि- 'जिसका शास्त्रज्ञान केवल जीविकानिर्वाह के लिए है, वह तो ज्ञान को बेचने वाला वणिक है'।[३]

कालिदास की मान्यता है कि उत्तम पात्र को दी गई शिक्षा अवश्य उत्कर्ष प्रकट करती है - ' पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातु:'।[४] कालिदास ने रघु का चित्रण करते हुए लिखा है कि गुरुवर्यों ने उपनयन संस्कार हो जाने के पश्चात् गुरुजनों के प्रिय रघु को शिक्षा प्रदान की और उनके प्रयास सफलता से मण्डित हुए हैं -

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितों
विनिन्यूरेनं गुरवों गुरुप्रियम् ।
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते
क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ।। [५]

यहाँ कहा गया है कि योग्य पात्र को दी गई शिक्षा ही सफल होती है । आज पात्रापात्र विचार के अभाव में ही शिक्षा बंदर के हाथ का खंजर बन गयी है। उत्तम पात्र का चयन भी उत्तम अध्यापक ही कर सकता है। पूर्वाग्रहग्रस्त अध्यापक इस कार्य को करने में असफल रहेगा और वह उसकी अयोग्यता का सूचक होगा -

'विनेतुद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति '[६]

कालिदास की दृष्टि में शिक्षा का विनय के साथ नित्य सम्बन्ध रहा है। विनय ने ही रघु को गुरुजनों का सहज स्नेहपात्र बनाया था । कवि ने लिखा है कि युवक रघु यद्यपि देह से बढ़ गए थे , फिर भी विनयवश वे झुके ही दीखे ।

वपु: प्रकर्षादजयद् गूरु` रघु -
स्तथापि नीचैर्विनायदृश्यत् । [७]

रघु में सहज और संस्कार ये दोनों ही विनय विद्यमान थे - 'निसर्गसंस्कारविनीत इत्यासौ'[८] विनय के साथ त्याग भी जीवन की पारसमणि है, रघु ने याचक बनकर आये हुए कौत्स के आगे कुबेर से सैकड़ों करोड़ सुवर्णमुद्राओं की वर्षा करा दी, तब कौत्स गुरुदक्षिणा के चौदह करोड़ से अधिक एक पाई भी लेने को तैयार न थे । सारा साकेत ठगा सा खड़ा था कि रघु और कौत्स में से किसे बढ़कर माने -

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ
द्वावप्यभूतामभिनन्ध्य सत्वौ ।
गुरूप्रदेयाधिकानि:स्पृहोऽर्थी
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ।। [९]

आज शिक्षा में बहुमुखी प्रगति होने पर भी उसकी विफलता का प्रधान कारण विनय और त्याग की भावना का अभाव है । फलत: ऐसी शिक्षा मानवता का नहीं केवल दम्भ का पोषण करती है।

अध्यापक एवं छात्रों के बीच के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है कि शिक्षण-अवधि में आचार्य छात्रों के लिए अध्यापक भी है और अभिभावक भी । छात्र के सर्वाङ्गिण कल्याण को दृष्टि में रखते हुए वे उसे विद्या प्रदान करते हैं। आश्रम में सभी छात्र समान होते हैं, चाहे वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश हो अथवा वरतन्तु के आश्रम में कौत्स । आचार्य को इसलिए शिष्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है - ' प्रभवत्याचार्य: शिष्यजनस्य' । [१०] इससे संकेत मिलता है कि कालिदास के युग में अध्यापको और छात्रों के बीच के सम्बन्ध अपेक्षा के अनुरूप प्रियकर थे ।

उसके विपरीत आश्रमों में अनुशासन का पालन कडकाई से होता था । महर्षि च्यवन के आश्रम में महाराज पुरूरवा के पुत्र कुमार आयु के आश्रम विरूद्ध आचरण

करने पर - आश्रम में एक पक्षी को बाण से मारने पर उसे आश्रम से तत्काल निष्कासित कर दिया था - 'भगवता च्यवनेनाहं समादिष्टा निर्यातय हस्त न्यासमिति' । [११] आश्रम की मर्यादा के परिपालन में सबका पूर्ण विश्वास था । उच्चवर्ग और सामान्य वर्ग सभी अपने पुत्रों को आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजते थे । महर्षि कण्व के आश्रम में शाङ्गॅरव और शारद्वत समाज के सामान्य वर्ग से आनेवाले छात्र प्रतीत होते हैं।[१२] रघुवंश में वरतंतु का शिष्य कौत्स भी सामान्य श्रेणी से आनेवाले छात्र है ।[१३] ऐसा कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता जहाँ इस वर्ग के छात्रों ने आश्रम के अनुशासन को उल्ल्ङ्घित करने का कभी प्रयास किया हो।

रघुवंश का आदर्श रहा कि शिक्षा का आरम्भ घर से हो और उसमे पिता की भूमिका प्रमुख हो । फलत: पिता में शील एवं योग्यता सहज आक्षिप्त है । रघु ने धनुर्वेद अपने पिताश्री दिलीप से ही पवित्र मृगचर्म धारण करके सीखा था । दिलीप सम्राट मात्र ही न थे, वे धनुर्धरो में अग्रणी भी थे - ' न केवलं तद्गुरुरेक पार्थिव:, क्षितावभूदेक धनुर्धरोऽपि स: ' ।[१४]

शिक्षा पद्धति के समान परीक्षा के सम्बन्ध में कालिदास के विचार स्पष्ट हैं ।
सही शिक्षा परीक्षित होने पर उसी प्रकार खरी उतरती है , जिस प्रकार अग्नि में डाला हुआ सोना । वह कभी मलिनता को प्राप्त नहीं होती ।[१५] मालविकाग्निमित्र नाटक में आयोजित नृत्य स्पर्धा में मालविका ने उत्कृष्ट नृत्य प्रदर्शन के लिए देवी धारिणी ने नृत्याचार्य गणदास की प्रशंसा की थी ।[१६] कालिदास की मान्यता रही है कि प्राप्त किए हुए ज्ञान की परीक्षा के लिए शिष्य को सदा तैयार रहना चाहिए । महर्षि वाल्मीकि से विद्या प्राप्त कर बालक लव-कुश ने अपने मौखिक रामायण पाठ से अयोध्या में सारी राजसभा को मन्त्रमुग्ध कर दिया था । कालिदास ने आचार्य से प्राप्त की हुई विद्या के प्रमाण स्वरूप किसी प्रमाणपत्र को कभी आवश्यक नही ठहराया । रघुवंश में आचार्य वरतन्तु ने अपने शिष्य कौत्स के विद्याध्ययन के प्रति अपना पूर्ण संतोष व्यक्त किया ।[१७]

निष्कर्ष : वस्तुत: कालिदास ने योग्यता का मापदण्ड गुरु से प्राप्त ज्ञान को माना है न कि मात्र उपाधि-पत्रक को। उस युग में छात्रों के बीच स्पर्धा ज्ञान प्राप्ति

के लिए होती थी, उपाधि प्राप्ति के लिए नहीं । इस प्रकार महाकवि ने अपनी कृतिओं में शिक्षा सम्बन्धी कतिपय ज्वलन्त प्रश्नों को उठाया है और उन प्रश्नों का अपने ढंग से समाधान भी रखा है । महाकवि कालिदास एक महान दूरद्रष्टा थे। महाकवि की मूल्यपरक शिक्षा और उनके विचारों की आज भी प्रासंगिकता है । आज के संदर्भ में भी उनकी अवधारणाएँ मननीय एवं विचारणीय हैं । यदि हम कालिदास की शिक्षा विषयक दृष्टि को पकड़ शके तो निसंदेह हमारी शिक्षा-समस्याएँ समाप्त हो सकती हैं ।

संदर्भ :

I. रघुवंश -१/८८
II. श्लिष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
    a. यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।। (मालवि. १/१६)
III. यस्यागम: केवलं जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति । (मालवि. १/१७)
IV. मालवि. १/६
V. रघुवंश- ३/२९
VI. માલવિકાગ્નિમિત્રમ્,સંપા.વર્ષા દવે અને અન્ય, પ્ર. સરસ્વતી પુ.ભંડાર- અમદાવાદ, અધ્યતન આવૃત્તિ-2009-10 , પૃ.88
VII. रघुवंश -३/३४
VIII. वही -३/३५
IX. वही -५/३१
X. १०. માલવિકાગ્નિમિત્રમ્,સંપા.વર્ષા દવે અને અન્ય, પ્ર. સરસ્વતી પુ.ભંડાર-
    a. અમદાવાદ, અધ્યતન આવૃત્તિ-2009-10 ,અંક-1 પૃ.90
XI. ११. विक्रमोर्वशीयम्, सं.शांतिकुमार पंडया, पार्श्व प्रकाशन -अमदावाद, तृतीय-
    a. संस्करण -१९९३, पृ. १६०
XII. १२. क्व ते शाड़गरवमिश्रा: । वही. पृ. ७०
XIII. १३. उपात्तविध्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्स: प्रपेदे वरतन्तुशिष्य। (रघुवंश -५/१)
XIV. १४. वही. ३/३१
XV. १५. उपदेश`विदु:शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिन:।
    a. श्यामायतेन विद्धत्सु य: काञ्चनमिवाग्निषु ।। (मालवि.-२/९)
XVI. १६. वही. पृ.९८
XVII. १७. समाप्तविध्येन मया महर्षिविज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै।
    a. स मे चिरायास्खलितोपचारा तां भक्तिमेवागणयत् पुरस्तात् ।।(रघुवंश-५/२०)

****

डॉ. भावना सोनी
आसीट्न्ट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग)
आदिवासी आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज
भिलोड़ा

Copyright © 2012- 2017 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat